साहिब से सब होत है, बन्दे से कछु नाहिं।
राई से पर्वत करे, पर्वत राई माहिं॥

नीचे लिखते हैं :—

न कुछ किया न कर सका, न करने योग्य शरीर।
जो कुछ किया सो हरि किया, भयो कबीर, कबीर॥

हरि और है, साहिब और है। ईश्वर और है, परमेश्वर और है। ब्रह्म और है, पारब्रह्म और है। क्या कहा मैंने !, कौन समझे इन बातों को आपको इसके समझने की ज़रूरत नहीं। "जो कुछ किया सो हरि किया" हरि तुम्हारा मन है, जो कुछ तुमको मिलता है तुम्हारे मन से मिलता है, बस ! एक बात का फ़ैसला है। हरि तुम्हारा मन है ! "जो कुछ किया सो हरि किया" अर्थात् जो कुछ किया तुम्हारे अपने मन ने किया; जैसा तुम्हारा ख़्याल था वैसा तुम्हारा हाल है, जैसी तुम्हारी मति है वैसी तुम्हारी गति है; जैसी तुम्हारी करनी है वैसी भरनी है, जैसी तुम्हारी नीयत वैसी मुराद है !

आज मैंने बहुत कुछ इशारों में कह दिया।

समझ गये मास्टर जी ! साहिब और हैं। न हो तो सुखमणि साहिब को पढ़ो ; कहीं हरि की सिफ़्तें है, कहीं प्रभु को सिफ़्तें हैं, नहीं समझ में आती है ! कहीं विसम्ाध को सिफ़्तें हैं। तो इन सन्तों की बाणी को समझने वाले सिख कहाँ हैं ! यह नहीं समझ सकते, नाहि ! बात बिलकुल ठीक है, मगर वह बयान इस तरीक़ से की गई है कि रोचक ! दाता दयाल ने आप कहा है "रोचक है मेरी वाणी" यथार्थ बात को कोई सुनने के लिए तैयार नहीं ! बच्चों को, दुनिया को रोचक और भयानक बातें बताओ वह आकर्षित होंगे; यथार्थ बात को कौन सुनता है ! कोई नहीं सुनता। इसवास्ते तीन क़िस्म की तालीम है। एक रोचक, एक भयानक, एक यथार्थ। मैं यथार्थ तालीम देता हूँ, इसीवास्ते मेरे सत्संग में कम आदमी आते हैं; जिनके दिमाग़ सोचने, समझने वाले हैं उनको मेरे पास से फ़ायदा पहूँचता है। नहीं समझ में आती है ? ता आज मैंगे आप लोगों को वहुत कुछ कह दिया। अब आरती करदो।

बन्दनम् सत ज्ञान दाता, बन्दनम् सत ज्ञान मय।
बन्दनम् निर्वाण दाता, बन्दनम् निर्वाण मय।।
भक्ति मुक्ति योग युक्ति, आपके आधीन सब।
आप हो हैं सिंध सद्गति, जीव जन्तु मान सब।।
आप गुरु सतगुरु दया, और प्रेम के भंडार हैं।
आप करता धरता हैं, करतार जगदाधार हैं।।
ऋद्धि सिद्धि शक्ति नवनिधि, हैं चरण में आपके।
बच गया भव दुख से, जो आया शरण में आपके।।
भक्ति दीजे नाम की, सत्तनाम में विस्राम दे।
राधास्वामी अपना कीजे, राधास्वामी धाम दे।

अब आप लोग आये हैं, किसी ने किसी से नाम लिया होगा, किसी ने किसी से नाम लिया होगा। ज़हाँ-जहाँ से तुमने जो-जो नाम लिया है उसी नाम पर शाकिर (सन्तुष्ट) रहो। समझते हो मेरा मतलब कि नहीं! नया चोला बदलने की कोई ज़रूरत नहीं!! सिर्फ़ सच्चे बन के अपने अन्तर चलो। और जिस गुरु से तुम ने नाम लिया हुआ है, जो यह समझता है कि उसका गुरु मर गया, उसने गुरु धारण नहीं किया।

गुरु अविनाशी है, गुरु इष्ट है। देखो! पत्थर

की मूर्ति होती है। हम जब जाते हैं तो क्या यह कहते हैं, ऐ पत्थर की मूर्ति मैंने तुमको बनाया था ? हमने उस मूर्ति में उसको माना हुआ है ! तो इसी तरह से जिन शख़्सों ने गुरु के रूप में उस मालिक को माना वे सफल हो सकते हैं मगर ऐसा मानना हर एक शख़्स का काम नहीं ; ऐसे दिमाग़ नहीं हैं, आजकल नुक़्ताचीनी बहुत है। इसवास्ते ज्ञान और विवेक की दृष्टि से गुरु के रूप को समझो, वह तुम्हारे अन्तर में रहता है। तुमको जो कुछ मिलना है तुम्हारे मन के चित्त को सच्चाई, यकसूई और सफ़ाई से मिलना है। जहाँ-जहाँ से तुमने नाम लिया हुआ है उसी गुरु को मानो; मैं कोई एक डिब्बे के मुर्गे-मुर्गियां अपने डिब्बे में नहीं डालना चाहता ! जो कुछ है तुम्हारी श्रद्धा और विश्वास है।

तुम ज़ीरा वाले आये हो, मुमकिन है तुमने कहीं से नाम लिया हुआ हो मुझे नहीं पता. मैं नहीं जानता। अगर लिया हुआ है, जो कुछ तुम्हारे पहले गुरु ने तुमको कहा हुआ है उसके ऊपर चलो। मेरे पास से सिर्फ़ सच्चाई ले जाओ। जितना तुम अपने अन्दर

में सच्चे बन के अपने अन्तर प्रेम करोगे तुमको उतना फ़ायदा मिलेगा ; जितना गुड़ डालोगे उतना मीठा होगा। बाकी रह गया तुम लोगों को कोई उलझनें हों, कोई बात समझने वाली हो, जिस तरह मैंने आज सत्संग में अर्थ बता दिये; तुमको पता नहीं है, इसलिए मैंने आपको सच्ची बात बता दी। मैं आप लोगों को अपने जाल में फँसाना नहीं चाहता, मैं इसको एक जुर्म समझता हूँ :—

बंधे को बंधा मिला, छूटे कौन उपाय।
कर संगत निर्बन्ध की, जो पलक लेत छुड़ाय॥

मैं निर्बन्ध पुरुष हूँ। निर्बन्ध होता हुआ तुमको बन्धन में कैसे डालूँ! डाल नहीं सकता!! बात सच्ची तुमको बता दी। मैं दाता से प्रेम करता था, वह समझाया करते थे :—

काहे बौराना हाय फ़कीरवा !
तेरे घट में माल खजाना,
तू भया दिवाना हाय फकीरवा।

फ़कीरा गुरु तो तेरे पास !

मगर मुझे यह समझ नहीं आती थी कि मेरे पास अन्दर में गुरु कैसे है ! मैं तो गुरु, दाता दयाल को धाम में या लाहौर में समझता था !! नहीं समझ में आती है ? तो यह बात समझने के लिए मुझे यह काम दिया था, दोस्तो ! मैं न गुरु हूँ, न महात्मा हूँ, मैं तुम्हारी तरह एक आदमी, इन्सान हूँ, जिसने अपना जीवन सच्चाई की खोज में गुजार दिया । जो समझ में आया, दाता ने कहा था चोला छोड़ने से पहले तालीम बदल जाना, मैंने बदल दी। ख़बर नहीं ठीक बदली, खबर नहीं ग़लत बदली, मुझे नहीं पता । जाओ ! सब को राधास्वामी ।

सूचना

सब संत्संगियों को सूचित किया जाता है कि हर साल की तरह इस साल भी गुरु पूर्णिमा का उत्सव 24 जुलाई, 1983 को मानवता मन्दिर में मनाया जायेगा ।

सैक्रेटरी

सत्संग परम सन्त परम दयाल पण्डित फ़कीर चन्द जी महाराज

मानवता मन्दिर होशियारपुर।

तिथि 14-12-74

जिन्दगी का गुर

परमारथ धन क्यों मिले, लिया टके का मन्त्र ॥
लिया टके का मन्त्र, गुरु किया भिक्षु भिखारी।
मांगे मरम भीख, भीख का बन व्यवहारी ॥
और का रोटा खाये, खोय पुरुषारथ अपना।
जागृत में भी देखे तत्व का, वह नहीं सपना ॥
झूठा पाखंड यन्त्र है, झूठा ही है तन्त्र।
परमारथ धन क्यों मिले, लिया टके का मन्त्र ॥

ब्रह्म बढ़े चिन्तन करे, यही ब्रह्म का अर्थ ॥
यही ब्रह्म का अर्थ, और कोई अर्थ न दूजा।
सोचे बढ़े सो ब्रह्म, वही करे ब्रह्म की पूजा ॥

बढ़ो बढ़ो बढ़ चलो, सोच कर ही निन बढ़ता।
जीवन का रस मिले. वृद्धि में जीवन गढ़ना ।।
वृद्धि भाव चिन्तन नहीं, उसका जीना व्यर्थ।
ब्रह्म बढ़े चिन्तन करे, वही ब्रह्म का अर्थ ।।

ज़िन्दगी बढ़ने का नाम है। यह ज़िन्दगी देखो नां! बढ़ा हुआ है; कितने सूर्य हैं, कितने चाँद हैं, कितने सितारे हैं। वह, तुम उसको खुदा कह लो, परमात्मा कह लो, ब्रह्म कह लो, वह बढ़ा हुआ है कि नहीं? देखो कितने कुर्रे हैं, कितनी ज़मीनें हैं, कितने आसमान हैं। तो नौजवानों के लिए यह तालीम है; बढ़ो! जिस्मानी तौर से बढ़ो, दौलत के तौर से बढ़ो इज्ज़त के तौर से बढ़ो, विचार के तौर पर बढ़ो। यह दाता दयाल जी महाराज की तालीम है।

फकीर किसी को नपुँसक नहीं बनाते अर्थात् कमज़ोर ख्याल नहीं देते हैं। बढ़ो! जिस्म से बढ़ता है इन्सान; हम बढ़ते हैं कि नहीं बढ़ते? हमारी असली चीज़ क्या थी? तुम या हम हैं, अपनी इब्तदा (आरम्भ) को देखो! बाप के दिमाग़ में एक छोटे से कीड़े थे कीड़े, जो ख़ुर्दबीन से नज़र आता था, आँखों से नज़र नहीं आता था। वह

बढ़ता-बढ़ता देखो ! सेठ दुर्गादास हुआ हुआ है कि नाहीं, फ़क़ीर चन्द बना हुआ है, पाँच साढ़े पाँच फुट का जवान बन गया शारीरिक तौर से। अकलीतौर से बढ़ो, रूहानी तौर से बढ़ो। ज़िन्दगी नाम ही बढ़ने का है। फैलो, जब यह इतना फैल जाये कि लमुहीत (सर्वव्यापक) हो जाये जिस तरह बट का वृक्ष है नां! बीज छोटा सा है उस बीज की कोई हस्ती है? बढ़ता-बढ़ता कहाँ तक बढ़ता है! इसलिए तुम लोग आये हो, बढ़ो! अनुभव ज़िन्दगी का अपने साथ रखो। हर चोज़ का वक़्त होता है। दौलत के कमाने का भी जिन्दगी में एक खा़स वक़्त आता है, याद रखना तुम तुम, को मैं बताये देता हूँ। भक्ति करने का भी ज़िन्दगो में एक वक़्त आता है। बच्चे पैदा करने का भी एक वक़्त आता है। अगर वह वक़्त हाथ से खो गया फिर पीछे से अफ़सोस करना पड़ता है। नौजवान बच्चे हैं, बढ़ें! अगर इन्होंने गलतियाँ खाईं; बढ़ने में जो चीजें रुकाबट डालती हैं उनको इस्तेमाल किया, पोछे से पछतायेंगे। ज़िन्दगो ही बढ़ना है। जो व्यक्ति

दुनिया की जिन्दगी में कामयाब नहीं हो सकता। वह आत्मिक या रूहानी दुनिया में कामयाब नहीं हो सकता। यह क़ानून है, Law है। तो बढ़ना चाहिए।

तुम आये हो बम्बई से, मैं खुश हूँ, तुम बढ़ रहे हो, बढ़ो! हम क्या बढ़ते नहीं है? शादी करना चाहते हैं। एक से दो बनते हैं, दो से तीन, चार, पाँच, छः, सात, बनते हैं कि नहीं; बच्चे बनते हैं, तो वह बढ़ना ही है नां! तो कुदरत का नियम ही बढ़ना है। तो जब बढ़ने की हद हो जाती है वह है मंज़िल-ए-मक़सूद (अन्तिम लक्ष्य)। जो बढ़ेगा ही नहीं वह मंज़िल-ए-मक़सूद को कैसे पहुँचेगा। तो दुनियावी तरक्क़ी करो, मन की तरक्क़ी करो, अक्ल की तरक्क़ी करो, चलते चलो। दाता ने इस शब्द में लिखा है :—

ब्रह्म बढ़ चिन्तन करे, यही ब्रह्म का अर्थ।
यही ब्रह्म का अर्थ, और कोई अर्थ न दूजा॥

साधारण हिन्दू कहते हैं नां, जीव ब्रह्म है। तो ब्रह्म के मायने क्या हैं? बढ़ना और सोचना। यह क़ुदरती जज़्बा है। तुम देखो नां, कितनी दुनिया बढ़ी हुई है, कितने लोक हैं, कितने स्थरे

हैं। बट का बीज होता है छोटा सा, बढ़ता है, दुनिया में काम करता है। तो जब तक इन्सान को जिन्दगी बढ़ नहीं जाती तब तक वह अपने घर या अपनी जो उसकी आद अवस्था है वह वहाँ ठहर नहीं सकता। मैं भी चल रहा हूँ! हमारे अन्तर बढ़ने की एक लगन व जज़बा है; इश्क है एक। तो यह खत्म नहीं होता, चलता रहता है। शारीरिक तौर से न बढ़ा, बूढ़ा हो जाता है, मन के तौर से बढ़ जाता है, दिमाग़ उसका चलता है। चलता है कि नहीं चलता? अब दुर्गादास मज़मून लिखता है, वह क्या है? वह बढ़ना ही तो है और है क्या! मैं काम करता हूँ, क्या है? बढ़ना ही तो है और है क्या। इसवास्ते नौजवानों के लिए फ़कीरों को यह तालीम हैं कि बढ़ो; अपाहिज मत बनो। तुम समझते हो कि नहीं, मोहन सिंह? बढ़ते चलो जिन्दगी, कितने ही जन्म तुम ले लो यह बढ़ती रहेगी। हमारे **Evolution** में कहते हैं कि नहीं कहते कि जिन्दगी मछली से शुरू हुई। मछली से कछुआ बनो, बढ़ो।

पक्षी बने, बढ़ी। फिर इन्सान बन गया। तो हर एक चीज़ यहाँ तरक्क़ी करती है। इसवास्ते बाहिम्मत और बाहौसला होकर जो शख़्स काम करते हैं वही इस ज़िन्दगी का लुत्फ़ (आनन्द) उठाते हैं ; बढ़ने में होता क्या है ? लुत्फ़ (आनन्द) ही लेता है नां आदमी ! मैं सत्संग कराता हूँ, गूढ़ से गूढ़ रहस्य बोलता हूँ, खुशी मुझे मिलती है कि नहीं ? पहले तो आनन्द मैं अपने आप लेता हूँ फिर दूसरा मेरे ख़्याल को सुनके आनन्द लेता है। नहीं समझ में आती है ? तो इस बढ़ने में रुकावटें आती हैं। उन रुकावटों का इन्सान मुकाबला करता है, घबराता नहीं। यह है, फ़कीरों की तालीम। तुम आये हो बम्बई से, तुमको मैं तुम्हारे दृष्टि-कोण से तालीम दे रहा हूँ ! समझते हो मेरा मतलब कि नहीं ? दाता ने लिखा है :—

यही ब्रह्म का अर्थ और कोई अर्थ न दूजा।
ऐसचे बढ़े सो ब्रह्म, वही करे ब्रह्म की पूजा ।।

बढ़ना ही पूजा है। इबादत करना, माला

फेरना नहीं है पूजा ! जिस्म से बढ़ो, विचारों से बढ़ो, विवेक से बढ़ो, ज्ञान से बढ़ो; प्रेम में बढ़ो, बढ़ते चलो, बढ़ना ही ब्रह्म है। शरीर जरूर दुर्बल हो जाता है तो फिर शरीर नहीं बढ़ता फिर उसका मन बढ़ता है। नहीं समझ आती है ! जिन्दगी सिर्फ़ शरीर तो नहीं है नां ! जिन्दगी में शरीर भी है, मन भी है, रूह भी है ; तीनों तरीकों से बढ़ना है। इसका उपाय क्या है ? इश्क। बढ़ने का हम में कुदरती जजबा है, कोई लगन है हमारे अन्दर किसी चीज की और वह बढ़ती रहती है। दाता दयाल का पहला शब्द जो पढ़ा गया, देखो क्या लिख गये दाता दयाल, कौन समझेगा इस को।—

लगी लगन छूटे नहीं, कितनौ करो उपाय।
कितनौ करो उपाय रोग यह बड़ा है भारो ॥

मैं अपनी ज़िन्दगी को देखता हूँ, अपनी ज़िन्दगी को ! छोटी उमर से राम को मिलने का ख़ब्त पैदा हुआ। दाता के चरणों में गया। अब मैं अपनी आत्मा से यह सवाल करता हूँ कि क्या तुम में चाह नहीं

रहती ? नित नई उमंग पैदा होती है कि नहीं ? नित नया जज़बा पैदा होता रहता है कि नहीं पैदा होता रहता ? तो जब तक यह ज़िन्दगी बढ़-बढ़ के; बढ़-बढ़ के, बढ़-बढ़ के लामकानी न हो जाये तब तक यह चाह समाप्त नहीं होती। ज़िन्दगी का आखिरी अंजाम क्या है ? लामकानी और लाज़वाली (अजर, अमर और अविनाशी) हो जाना। तमाम उसकी जो ज़िन्दगी है वो यह महसूस करने लगे कि तमाम संसार में मैं ही फैला हुआ हूँ। यह बढ़ने की हद है। रूहानी तौर से आदमी अपने अन्तर में यह महसूस करने लगे कि मैं सब जगह व्यापक हूँ अर्थात् इतना बढ़ता है वह कि अपने आप को सर्व-व्यापक समझता है। तो वह कब समझेगा ? जब वह बढ़ता चलेगा तब सर्वव्यापक होगा वह। इसलिए तुम नौनवान हो, बढ़ो। तू भी सुनती है कि नहीं सुनती, सत्संग में आई है!

नौजवान में ताक़त होती है, वह जिस्मानी तौर से बढ़ता है, कारोबार में बढ़ता है इन्सान का, जिस्म नहीं भी काम करता, तो मन से बढ़ता है।

वह मन से, अपने ख्याल से बढ़ता है। फिर जब रूहानी जिन्दगी आ जाती है फिर रूह से बढ़ता है। तो यह एक कुदरती जजबा है। हम जहाँ से आये हैं हमने वहाँ जाना है। हम कहाँ से आये है? लाजवालीयत से, परमतत्त्व से! यहाँ आ गये। अब हम जब तक बढ़ेंगे नहीं वहाँ पहुँचेगे कैसे! इसवास्ते जिस्मानी तौर से तरक़्क़ी करो; नौजवान हैं, इनको जहाँ तक हो सके पहले सेहत का ख्याल रखना चाहिए। अपने कैरेक्टरों (चरित्रों) को बनाओ। समझते हो कि नहीं, तुम आये हो अपने कैरेक्टरों को बनाओ; तरक़्क़ी करो। वक़्त आयेगा तुम जो पहले थे वही हो जाओगे। पहले भी तुम जात थे फिर भी जात हो जाओगे। मगर कब? जब विरह होगी। क़ुदरतन इन्सान के अन्दर एक विरह, एक तलाश पैदा हो जाती है। यह तलाश किसी को किसी क़िस्म की है, किसी को किसी क़िस्म की है, किसी को किसी क़िस्म की है। तो दाता दयाल जी कहते है :—

कितनो करो उपाय रोग यह बड़ा है भारी ।
सहे कलेजे घाव, लगी जब विरह कटारी ।।

बिरह सिर्फ औरत का इश्क नहीं है। नहीं समझ आती है। दुनिया में तरक्की करने का भी विरह है, मन को बढ़ाने का भी विरह है, रूहानी दुनिया में भी विरह है। तो यह खत्म नहीं होता जब तक यह लामुहीत (सर्वव्यापक) न हो जाये :—

घायल की गति लखे, कौन जो घाव न खावे।
अन्तर में है चोट, कोई कैसे दरसावे ।।

दाता दयाल ने एक किताब लिखी है उस किताब का नाम है 'नवजीवन सुधार'। दो नौजवान आदमी उनके पास गये कहते हैं कुछ नहीं मिलता हमें; कमाने को कुछ नहीं, भूखे मरते हैं, नौकरी नहीं मिलती, यह नहीं होता, वह नहीं होता, वह नहीं होता, वह नहीं होता। दाता ने उनको बोला तुम ब्रह्म बनो। वे कहते हैं ब्रह्म क्या है! यह तो मजहबी दुनिया के आदमी हैं। उन्होंने उनको समझाया कि इसके मायने ये हैं कि आज एक इन्सान

कमज़ोर है, ग़रीब है उसको हिम्मत करनी चाहिए, तरक्की करनी चाहिए, हिम्मत से काम लेना चाहिए। ज़िन्दगी पुरुषार्थ का नाम है। पुरुष+अर्थ=पुरुषार्थ; हिम्मत का काम है। जब तक जिस्म चलता है जिस्म से बढ़ो, जब देखो कि जिस्मानी कमज़ोरी है तो फिर मन से बढ़ो। समझता है ज्ञानचन्द? विचार से बढ़ो, ख्याल से बढ़ो। यह है दाता की तालीम और यह दाता की ही तालीम नहीं है यह कुदरती जज़बा है इन्सान के अन्तर। एक छोटा बीज ज़मीन में पड़ जाता है, वह फटता है निक्की सी कोंपल, पोले से रंग का पत्ता निकलता है, घबराता है। घबराता है कि नहीं घबराता? क्या उसकी हस्ती है! मगर वही बढ़ता-बढ़ता किसी दिन बड़ा भारी दरख्त हो जाता है। आम बन जाता है, दुनिया उसीका फल खाती है।

वह ज़िन्दगी ही क्या है जो तुम्हारी ज़िन्दगी से दूसरों को फ़ायदा न पहुँचे। धनवान् हो धन से फ़ायदा पहुँचाओ, जिस्म वाले हो जिस्म की ताकत

से किसी की मदद करो। समझते हो कि नहीं। बुद्धि है तुमको तो बुद्धि से किसी का फ़ायदा करो। रूहानी हो तो रूहानी दुनिया से किसी का फ़ायदा करो। यही ज़िन्दगी का मक़सद है और है क्या ! यह कुदरती ज़िन्दगी है, Natural Law है यह, बढ़ना :—

प्रेम का मारा ना जिये, सिसक सिसक दम जाय।
लगी लगन छूटे नहीं, कितनो करो उपाय ॥

देखो ! राम थे। तुम देखो बढ़ने की एक मिसाल : तनतनहा जंगल में चले गये ; एक लक्ष्मण, एक सीता और एक राम। क्या किया उन्होंने ? बानरों को, रीछों को, अपने साथ लेकर के एक बड़े भारी रावण को फ़तह किया उन्होंने। तनतनहा निकले थे घर से कोई साथी था ? कोई फ़ौज थी ? कोई धन था ? कोई पैसा था ? यह नौजवानों के लिए कह रहा हू ; तुमको सत्संग करा रहा हू क्योंकि तुम नौजवान् हो बढ़ो ! मेरे छोटे भाई को दाता दयाल ने यही तालीम दी, मुझको भी यही तालीम दी। मैं चूँकि परमार्थी था, रूहानी

दुनिया का आदमी था। काफ़ी तरक़्क़ी कर गया हूँ। अब मैं सर्वव्यापक हो रहा हूँ। अब वो जो मेरा रूहानी तौर से बढ़ने का जज़्बा था नां, अभी है, मगर अब वो शान्ति को हासिल कर रहा है अर्थात् इतना बढ़ गया हूँ कि अब मैं महसूस करता हूं कि अब मैं लामकानो हूँ, लाज़्वालो हूँ। तो यह है ज़िन्दगी का गुर।

तुम आये हो, तू आई है, तेरे जज़्बे की मैं क़द्र करता हूँ बेटी! बढ़ो! उस बढ़ने को अपने दिल में रखो। तड़प दिल में रहे। अपने जज़्बात को बाहर मत बताया करो। जो आदमी अपने जज़्बात को बाहर बता देता है वह कमज़ोर हो जाता है, यह बताये देता हूँ आपको। तुम बाहर से कोई नई खबर सुन के ले आओ। कोई ख़बर सुनो, तुम्हारा जो करता है किसी को बताऊँ। करता है कि नहीं जी करता? तो जब तक तुम नहीं बताओगे, तुम्हारे दिल में हिम्मत और हौसला रहेगा। जहाँ तुमने दो, चार, दस आदमियों को वह बात बता दी फिर तुम ठुस हो जाओगे। इसवास्ते अपने

दिल के जज़बे को अपने अन्तर काबू रखने की कोशिश करो। कई आदमी मैंने देखे हैं, अभ्यास करते हैं उनकी काफ़ी तरक्की हो जाती है; अन्तर में बहुत से नज़ारे उनको मिल जाते हैं, वे दोस्तों को बता देते हैं। फिर मेरे पास कई आदमी आते हैं, कहते हैं बाबा जी! अब वह हालत नहीं रही। समझ में आई आपके या नहीं आई है! कई सत्संगी मेरे पास आते हैं, कई चिट्ठियें भी लिखते हैं, हमने यह कुछ देखा, यह कुछ देखा, यह कुछ देखा, मैं दूसरों को बता गया अब मुझमें नहीं आता। तो अपने जज़बे को अपने अन्तर में काबू रखो। इसवास्ते बार-बार कहा जाता है कि अपने ख्यालात को जो तुम्हारे अभ्यास के होते हैं यह सिवाय गुरु के आम सत्संगियों में मत कहा करो, आदमी कमज़ोर हो जाता है। तुम हुए कि नहीं कमजोर? बस, देखो वह बैठा हुआ है बूढ़ा! तो यह उपाय है इस ज़िन्दगी में सफ़र करने का, ज़िन्दगी ने तो वहाँ पहुँचना ही है; हम जिस घर से आये हैं हमने वहाँ ज़रूर पहुँचना है, मगर पहुँचोगे कब? जब हम

शारीरिक तौर से, मानसिक तौर से, आत्मिक तौर से बढ़ जायेंगे। जब आत्मिक तौर से इन्सान बढ़ जाता है फिर वह लामुहीत (सर्वव्यापक) हो जाता है; उसको फिर शान्ति मिल जाती है! समझ गये हो मेरी बात को कि नहीं समझ में आती है? खूब काम करो, दिल लगाके काम करो, हिम्मत से काम करो और अपने राज़ को अपने अन्तर रखा करो। तुम Business करते हो, जो अपने Business के राज़ को खोल देगा, failure (असफल) हो जायेगा। हर जगह पर्दा है। पिछले ज़माने में जब औरत गर्भवती हो जाती थी आठ महीने तक किसी को बताते नहीं थे कि यह गर्भवती है। पर्दा रखती थी औरत। आठवें, नौवें महीने जाके फिर वह बताते थे कि हाँ, इसके बच्चा होने वाला है। तो जो चीज़ तुम अपने साधन करने से अभ्यास में हासिल करते हो उस को हर शख्स को बताया मत करो। बस यह है नुक्ता :—

ब्रह्म बढ़े चिन्तन करे, यही ब्रह्म का अर्थ ॥
यही ब्रह्म का अर्थ; और कोई अर्थ न दूजा।

सोचे बढ़े सो ब्रह्म, वही करे ब्रह्म की पूजा ।।
बढ़ो बढ़ो बढ़ चलो, सोच कर नित ही बढ़ना ।
जीवन का रस मिले, वृद्धि में जीवन गढ़ना ।।

तरक्की करने में आनन्द मिलता है। तरक्की कई किस्म की है; दुनियावी तरक्की भी है, शारीरिक तरक्की भी है, मानसिक तरक्की भी है और रूहानी तरक्की भी है। इसमें लुत्फ़ मिलता है। मैं अब सत्संग करता हूँ, अभ्यास करता हूँ, enjoy करता हूँ, लुत्फ़ लेता हूँ :—

वृद्धि भाव चिन्तन नहीं, उसका जीना व्यर्थ ।
ब्रह्म बड़े चिन्तन करे, वही ब्रह्म का अर्थ ।।

यह ! तो बढ़ने में क्या है? सब से पहले पुरउम्मीद (आशावादी) रहना। ब्रह्म बनने में अगर कोई चीज़ हमारी मदद करती है तो पुरउम्मीद (आशावादी) रहना, Optimistic Views रखना ; Negetive ideas नहीं रखना कि हाय, यह न हो जाये, हाय, यह न हो जाये, हाय, यह न हो जाये। जो ऐसा ख़्याल करते रहते हैं, हाय ! यह न हो जाये, हाय !

यह न हो जाये, हाय ! यह न हो जाये वे कामयाब नहीं होते ।

मैं IIIrd Middle हूँ, पुराने ज़माने की आठ ज़मातें पढ़ा हुआ हूँ, सिपाही का लड़का हूँ, पास पैसा नहीं, सत्संग में कितना निर्भय होकर बोलता हूँ। डरता हुँ किसी से ? नाहिं, विलकुल नहीं ! क्योंकि दाता ने बढ़ने का गुर बताया। मैं रूहानी तौर से बढ़ा हूँ। आप समझते हो मेरा मतलब ? मेरी दुनियावी ज़िन्दगी जो है वह अच्छी नहीं, मगर दुनियावी ज़िन्दगी की परवाह नहीं की। मेरी प्रकृति जो थी वह थी परमार्थ की तरफ़, मैंने उसकी तरफ तरक्की कर ली। तो ज़िन्दगी का गुर है बढ़ना और उन्नति करना। दाता दयाल ने तो अपने अन्तिम सत्संग में यहाँ तक ज़ोरदार लफ़्ज़ों में कह दिया कि जो बढ़ता नहीं और उन्नति नहीं करता उसको गोली मार दो।

और अब कबीर साहिब अपनी मस्ताना धुन में क्या गाते हैं यह भी सुन लो :—

मगन में रहता,
उन्मनि हाथ पकड़ कर चलता ;
जैंहि देखो तैंहि भूला भला ॥
घट भीतर बाजे बजन्तर,
[illegible] झूला झूले जी कलन्दर ।
इक्कीस सुरंग ऊपर एक मन्दिर,
[illegible] है अन्दर ।
जैसे कातंइ भूला भूला ॥
इस मन्दिर का झूला करले,
पांच तत्व के झौंके ले ले ।
उलट पलट चित कसरत करले
दस नादों को आवाज़ सुन ले ॥
जैंहि देखो तैंहि भूला भूला ॥
तन का मनका उलट कर देखे,
तन बैठे हैं लाल झरूके ।
कहैं कबीर रामानन्द घर के,
इन [illegible] रफ़ा को बिरला परखे ।
जिस के घट भीतर उज्याला ॥

★ ● ★

फकीरयोग अथवा मानवयोग

लेखक: —

परमसन्त हुज़ूर मानव दयाल डा: ईश्वर चन्द्र जी महाराज

योग शब्द के सामान्य यानि आम और विशेष यानि खास दो प्रकार के मतलब होते हैं। यह शब्द संस्कृत की 'युज्' धातु से निकला है जिसका मतलब जोड़ देना, जुड़ जाना या सम्बन्धित होना है। साधारण रूप से योग का मतलब आत्मा अथवा सुरत का अपने निज धाम से या आधार से जुड़ जाना है। इस साधारण दृष्टि से भी योग के दो पहलू होते हैं। इसके पहले रूप या पहलू को वह साधन कहा जाता है जिसके अपनाने से आत्मा अपने परमात्मा से मिल जाती है, इस ख्याल से साधन या साधना एक सीढ़ी है मंजिल नहीं है। इसके दूसरे पहलू का मतलब अनुभव की वह अवस्था या हालत है जहाँ पर पहुँच कर आत्मा अपने आप में पूर्ण बन जाती है। इस दृष्टि से इस हालत को जीवन्मुक्ति अथवा पूर्णता

को वह हालत कहा जाता है जो जीते जी मिल जाती है।

ध्यान और रूहानियत के संयम से जो ऊँची से ऊँची अवस्था मिलती है उस अवस्था को समाधि कहा जाता है। समाधि की हालत में मन सिर्फ़ उस रूप में विलीन ही नहीं हो जाता जिसका वह ध्यान कर रहा होता है, बल्कि वह पूरी तरह से अपने आप में गुम हो जाता है कि सभी बोधमान खत्म हो जाता है। जब अभ्यासी समाधि की इस हालत में पहुँच जाता है उस समय उसे अपनी चेतना की क्रिया का बोध भी नहीं रहता। इस अवस्था में ही योगी सभी चित्त की वृत्तियों का निरोध कर देता है और आत्मा के साक्षात्कार की चोटी पर पहुँच जाता है। योग के अभ्यास का सामाजिक, नैतिक और घरेलू अनुभवों से कोई विरोध नहीं होता। योग में ऐसे व्यावहारिक नियमों पर चलना पड़ता है जो सिर्फ़ कथना न होकर यथार्थ नियम होते हैं और साधक को परमतत्त्व का सच्चा अनुभव देकर उसे जीवन में

भी सफल बना देते हैं। इसलिए चित्तवृत्ति का निरोध या बन्द होना हमारी क्रियाओं का ख़त्म होना नहीं है बल्कि रूहानियत के ऐसे ज्ञान का पैदा होना है जिससे मन की अन्दरुनी शक्तियाँ हमारी दुनिया का काम भी बना देती हैं। असल में चित्तवृत्तियों के बन्द होने से साधक में सभी क्रियाओं को कामयाबी से करने की ताक़त पैदा हो जाती है। इसका उदाहरण परम दयाल जी का सारा जीवन है। इसलिए चित्तवृत्तियों का बन्द हौना, निकम्मा होना नहीं है। इसके विपरीत यह निरोध ऊँची से ऊंची क्रिया है, ऊँची से ऊँची गति है और ऐसी ऊँची से ऊँची चेतना है जो साधक को मिल सकती है।

योग के साधन से यानि कि रूहानियत के नियमो पर चलने से जो ऊँचे से ऊँचे ज्ञान की अवस्था मिलती है उसी को ही सभी भारत के दर्शनों में, न्याय में, वैशेषिक में, सांख्य में, योग में, मीमाँसा में, बौद्ध धर्म में, जैन धर्म में, और उनिषदों और भगवद्गीता में जीवन्मुक्ति की अवस्था कहा गया है। अगर किसी को जीते जी यह अवस्था नहीं

मिलती उसको मृत्यु के बाद कोई मुक्ति नहीं मिल सकती। इस अवस्था का पाना आत्मा में छिपी अनन्त शक्तियों का उभर जाना है और मनुष्य की पूर्णता का निखार है।

क्योंकि मोक्ष की प्राप्ति यानि कि परमतत्त्व से मिल जाना भारत के सभी दर्शनों और सम्प्रदायों में जीवन का परमलक्ष्य माना गया है इसलिए योगसाधना जिसके द्वारा जीवन्मुक्ति मिलती है असल में एक करनी का तरीक़ा है यानि विधि है जिसे विश्व के सभी धर्मों ने और भारतीय दर्शन के सभी सम्प्रदायों ने किसी न किसी रूप में स्वीकार किया है। इसलिए योग को बौद्ध धर्म में और जैन धर्म में भी बहुत ऊंचा स्थान दिया गया है। किन्तु आत्मा को यह ऊँची से ऊँची अवस्था एकदम नहीं मिल सकती। रूहानियत की पूर्णता का रास्ता कठिन है। साधना करने वालों को आखिरी मंजिल तक पहुँचने के लिए बहुत से दर्जों से गुज़रना पड़ता है।

मनुष्य क्या है? वह ज्ञानेन्द्रियों वाले शरीर, बाधभानों वाले मन और प्रकाशमय आत्मा की

मिलौनी है। इसलिए यह ज़रूरी है कि रूहानियत में आगे बढ़ने के लिए ज्ञानेन्द्रियों को मन के संयम से रोका जाये, मन को पवित्र प्रेम और आशावादी विचारों से शुद्ध किया जाये और फिर अपने अन्तर में प्रकाश का अनुभव किया जाये। जिस फ़कीर-योग की यहाँ व्याख्या की जा रही है वह इसी दर्जा-ब-दर्ज़ा रूहानी तरक़्क़ी की व्याख्या है जिसमें हम ज्ञानेन्द्रियों से उठकर मन पर और मन से उठकर आत्मा पर पहुँचते हैं। सिर्फ़ इतना ही नहीं है अन्त में इस रास्ते को अपनाने से सत्संगी या साधक उस चौथे पद पर पहुँच जाता है जिसको समता की अवस्था कहा जाता है। इसी अवस्था को आत्मा की पूर्ण स्वतन्त्रता कहा जाता है।

फ़कीरयोग केवल एक सिद्धान्त या कोरा ख्याल नहीं है. बल्कि वह एक साधन के रूप में और एक अनुभव की अवस्था के रूप में जीवन पर लागू किया जा सकता है। मैं यहाँ पर इस बात को और भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ और इसलिए यहाँ पर

बीसवीं शताब्दी के सब से महान् सन्त परम सन्त परम दयाल पण्ड़ित फ़कीरचन्द जी महाराज के अनुभवों पर थोड़ा सा प्रकाश डालना ज़रूरी है। मानवता मन्दिर होशियारपुर के इस महान् सन्त ने न ही केवल पूर्ण फ़कीर के रूप में फ़कीरयोग की ऊँची से ऊंची अवस्था को हासिल किया बल्कि उन्होंने इस योग की ऊँची हालत को बहुत सीधे-सादे शब्दों में बयान किया और उन सभी सन्देहों को दूर किया जिनसे कि इस योग को सिर्फ़ कल्पना ही समझा जा सकता था।

फ़कीरयोग के बारे में मेरी यह धारणा है कि यह आत्मानुभूति के अनुभव की ऐसी ऊँची से ऊँची हालत है जिसे एक व्यक्ति मनुष्य के शरीर में रहते हुए पा सकता है। इसके साथ-साथ इसको इस तरह से वाणी से परे नहीं कहा जा सकता कि इसका बयान करते हुए फ़कीरयोग को अनुभव करने वाला व्यक्ति सुनने वाले के मन पर कोई प्रभाव न डाल सके। दूसरे शब्दों में जब इस योग को अनुभव करने वाला व्यक्ति किसी को अपना अनुभव सुनाता है तो

सुनने वाले का मन कोरा नहीं रह जाता। इस प्रकार जब एक फ़कीर फ़कीरयोग की हालत को बयान करता है तो वह उस वक़्त किसी दूसरे के ख़्याल को, किसी पुस्तक को या किसी मन्त्र को दोहरा नहीं रहा होता क्योंकि इस प्रकार का दोहराना कोरा ख़्याल रह जाता है। इस गहरे योग को भाषा में बयान करना बिलकुल सीधा, सरल और ठोस होता है। इस तरह से इस योग की व्याख़्या, ध्यान से सुनने वाले सत्संगी के हृदय में और आत्मा में घुस जायेगी।

फ़कीरयोग पूरी तरह से व्यावहारिक है और उसे आसानी से बतलाया जा सकता है और अनुभव किया जा सकता है, इसलिए इस योग को सहजसमाधि कहा जाता है। वह हर क़िस्म के रहस्य को दूर कर देता है और रूहानियत के गुप्त अनुभव को ऐसा सजीव यानि ज़िन्दा बना देता है कि हमारे ईश्वर के, आत्मा के, विश्व और कर्त्ता के सम्बन्ध में जो भी भ्रम होते हैं वे सब दूर हो जाते हैं। इसी तरह से माया और ब्रह्म, आचार और तत्त्वशास्त्र के बारे में हमारे विचार बिलकुल स्पष्ट

हो जाते हैं। इसलिए इस योग को दूसरे व्यक्ति की भलाई के लिए बयान करने से सिद्धान्त एक क़िस्म का जीता जागता अनुभव बन जाता है।

जैसा कि पहले कहा गया है सभी योग आत्मा को परमतत्त्व से मिला देते हैं। फ़क़ीरयोग भी ऐसा ही करता है। लेकिन फ़क़ीरयोग की विशेषता यह है कि इसमें परम सत्य के अनुभव को दूसरों से बांटा जा सकता है। वह फ़क़ीर को तो ज्ञानी बनाता ही है और सुनने वालों को भी इसलिए ज्ञान का प्रकाश दे देता है क्योंकि अलख, अगम और अनिवर्चनीय अनुभव को सीधे-सादे शब्दों में बताया जा सकता है। इसका मतलब यह है कि परमतत्त्व की ऊँची से ऊँची हालत हर एक को प्राप्त हो सकती है। फ़कीरयोग साधन की दृष्टि से और आख़िरी मंज़िल की दृष्टि से हर आम यौर ख़ास के लिए हर वक़्त उपलब्ध है। इसलिए मैं इस योग को जन साधारण का योग यानि कि मानवयोग कहता हूँ।

समाधि के साधन के रूप में फ़कीरयोगमें हमें

आँखें, कान और ज़बान बन्द करके अपने ध्यान को अन्तर में ले जाना पड़ता है। क्योंकि आँख का काम देखना, कान का काम सुनना और ज़बान का काम बोलना है इसलिए उन्हें अन्तर्मुखी करने पर भी अपना काम देना पड़ता है। इसलिए ज़बान को सुमिरन, आँखों को ध्यान और कानों को अन्तर शब्द का सुनना या भजन दिया जाता है।

इसलिए वह सद्गुरु जो खुद फ़कीर है, शिष्य को एक खास नाम या मन्त्र देता है ताकि वह उसका अजपाजाप करे। वह उसे यह भी हिदायत देता है कि अपनी आँखों को अन्तर में तीसरे तिल पर, अपनी भौंओं के बीच में, मस्तक में ऊपर की तरफ़ लगा दें और ऐसा करते समय वह उस गुरु की मूर्ति का ध्यान करे जिसे उसने परमतत्त्व का रूप माना हुआ है। इसके साथ ही साथ गुरु यह भी हिदायत देता है कि वह अपने अन्तर में उस शब्द को सुने जो पहले कानों में और बाद में मस्तिष्क में सुना जाता है। यह तीन असूलों वाला साधन, साधक को सहस्त्रदलकमल, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न और भँवर-

गुफा के दर्ज़ों से निकालता हुआ सत्तलोक की अवस्था तक ले जाता है। इन अवस्थाओं या दर्ज़ों पर उसे अलग-अलग दृश्य दिखाई देते हैं, अलग-अलग शब्द सुनाई देते हैं और उसे अनेक अन्तर के आनन्दों का अनुभव होता है तथा अन्त में सत्तलोक में आत्मिक आनन्द मिलता है। जब साधक भौतिक दृश्यों और आवाजों की हद से पार हो जाता है तो उसे अनन्त प्रकाश और अनहद नाद का अनुभव होता है। इसके अलावा उसे सत्तपुरुष का दर्शन भी होता है। सत्तलोक की अवस्था से परे अलख पुरुष अथवा अदृश्य पुरुष, अगम पुरुष और अनामी पुरुष के दर्जे हैं। इन तीनों दर्जों से परे सबसे ऊँची अवस्था परात्पर ज़ात की अवस्था है, जिसको बयान नहीं किया जा सकता, जिसे अलग-अलग फकीर और सन्त अलग-अलग नामों से पुकारते हैं और राधास्वामीमत उसे दयाल पुरुष कहता है।

जहाँ तक फकीरयोग या सुरत-शब्द योग का सम्बन्ध है परम दयाल जी के अनुभव के मुताबिक भँवरगुफा तक की अवस्थाओं को सिर्फ़ मानसिक और ख़्याली ही समझना चाहिए। रूहानियत का अनुभव

सत्तलोक से प्रारम्भ होता है। साधन की दृष्टि से ये सभी दर्जे सीढ़ियाँ हैं, मंज़िल नहीं हैं। इसलिए यह ज़रूरी है कि इसका अभ्यास ऐसे वीतराग पुरुष यानि फ़कीर की देखरेख में किया जाये जो जीवन्मुक्त अवस्था तक पहुंच चुका है। जीवन्मुक्त अवस्था उस वक़्त मिलती है जब व्यक्ति को सब ज्ञान हो जाता है और उसे यह पता चल जाता है कि उसका असली आपा यानि ज़ात मन के सभी अनुभवों से परे है। बहुत कम लोग ही अनुभव की इस उच्चतम अवस्था पर पहुँच सकते हैं हालांकि हर एक आदमी के अन्दर इस पर पहुचने की ताक़त मौजूद है। सुरत-शब्द योग की दीक्षा ले लेना इस पूर्णता की अवस्था को पाने के लिए काफ़ी नहीं है। उस वक़्त तक कोई भी व्यक्ति, सन्त या अवतार जीवन्मुक्ति और आवागमन से मुक्ति हासिल नहीं कर सकता जब तक कि उसके सभी कर्मों का अन्त नहीं हो जाता।

इसलिए यह ज़रूरी है कि हर एक साधक को फ़कीरयोग का साधन उसके स्वभाव और उसके

हालात के मुताबिक सिखाया जाये। हर एक जीवात्मा इस पृथ्वी पर ख़ास मक़सद को पूरा करने के लिए जन्म लेती है इसलिए अलग-अलग व्यक्तियों के कर्मों का अलग-अलग ढाँचा होता है। एक ही ओषधि सभी रोगों को दूर नहीं कर सकती। इसलिए सतगुरु साधक को पहले उसके मन को शुद्ध करने के लिए ख़ास हिदायत देकर अन्तर्मुखी तीन अनुभवों वाला मार्ग बतलाता है। अगर कोई व्यक्ति एक दम इस त्रिविध सुरत-शब्द योग का मन को शुद्ध किये बिना अभ्यास करता है तो उसका ख़तरनाक परिणाम हो सकता है। यही बात ख़ासकर उन लोगों के साथ घटित हो रही है जिन्हें उन नामों का अर्थ बताये बिना ही जिसका उन्हें अभ्यास करना है समूह के अन्दर नाम दान दिया जाता है।

दाता दयाल महर्षि शिवब्रत लाल वर्मन जी महाराज ने फ़क़ीरयोग के नाम दान की परम्परा शुरू की थी। परमदयाल पण्डित फ़क़ीर चन्द जी महाराज ने उसकी बहुत सुन्दर व्याख्या की है। उस योग में कोई ख़तरा नहीं है और इसके द्वारा धीरे-२ सहज में रूहानी तरक्की होती है। अधिकतर लोग अपनी दुनियावी

इच्छाओं और ज़रूरतों की पूर्ति चाहते हैं इसलिए उनके लिए यह ज़रूरी है कि पहले सिर्फ़ अपनी दुनियावी इच्छाओं को पूरा करने के मक़सद से ही किसी गुरु, अवतार, देवी या देवता पर ध्यान लगायें। यह बहुत आवश्यक है कि उनकी इच्छाएँ आशावादी होनी चाहिएँ और निराशावादी या किसी को नुक्सान पहुँचाने वाली नहीं होनी चाहिएँ। दूसरी बात यह है कि उनको शिव-संकल्प का अभ्यास करना चाहिए। शिवसंकल्प के अभ्यास का मतलब किसी भी प्राणी को अपनी तरफ़ से शरीर, मन और वचन से हानि नहीं पहुँचानी चाहिए। इस असूल पर चलकर धीरे-२ मनुष्य उस ब्रह्मज्ञान की अवस्था तक पहुँच सकता है जिस से हर एक मनुष्य में ईश्वर को देखता है। इस हालत को चश्मेवादत भी कहा जाता है। ऐसा मनुष्य दाता दयाल जी महाराज के लिखे हुए नीचे दिये गये विचार को अच्छी तरह से समझ सकता है :—

अब आदमी कुछ और हमारी नज़र में है।
जब से सुना है यार लिबासे बशर में है॥

फ़कीरयोग की इस अवस्था को तीन असूलों वाले सुमिरन, ध्यान और भजन के साधन से पाने के बाद व्यक्ति पूर्णता को हासिल कर सकता है।

सत्संग हज़ूर परम सन्त मानव दयाल जी महाराज

मानवता मन्दिर होशियारपुर ।

तिथि 5-12-82

साधु अचरज अकथ कहानी ।।

रूप न रंग न रेखा वाके, निराकार निरवानी ।
कोई कहे तो कहे किस मुख से, नहीं वहाँ मन बानी ।।
पार अपार बार नहीं वाका, अपरम्पार निशानी ।
बिन पग चले बिना अंग डोले, बिन जिभ्या मृदुबानी ।।
भेद अभेद नहीं वहां कुछ भी, कैसे कोई पहचानी ।
हम तो सार शब्द लख पाया, सतगुरु की सहदानी ।।
नहीं आवे नहीं जावे कहीं वह, निश्चल अमन अमानी ।
जड़ चेतन विवेक कहो कैसा, केहि विधि तेहि अलगानी ।।
वह अनाम वह अगति अमाया, माया नाम रहानी ।
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, जागे गुरुमुख ज्ञानी ।

राधास्वामी !

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ।।
ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चिज् जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।।

मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप परमप्रिय सत्संगी भाइयो और बहनो! हम पहले गुरु को नमस्कार करते व गुरु के सामने नतमस्तक होते, सिर झुकाते हैं। गुरु की ही महिमा परम दयाल जी महाराज 95वें वर्ष तक गाते और गुरु का रूप लोगों को समझाते रहे कि गुरु का रूप क्या है। गुरु का रूप समझे बिना न तो हमें पारिवारिक व सांसारिक सुख मिल सकता है और न हमें वह शान्ति मिल सकती है जिसकी खोज में मुनि, तपस्वी, योगी भक्त लगे रहे व लगे रहते हैं। जिस तरह उस मालिक का पारावार नहीं जैसे कि दाता दयाल जी महाराज के आज के पढ़े गये शब्द में कहा गया है इसी तरह से गुरु शब्द का उद्देश्य भी बहुत गहरा है।

गुरु को नमस्कार करने का मतलब यही है कि

हम उस तत्त्व के सामने नतमस्तक हो जायें, अपना सिर झुका लेवें जो अनन्त है। यह तत्त्व या मालिक हमारे अन्दर ही है लेकिन उस पर हमारी "मैं" व हमारे अज्ञान का पर्दा पड़ा हुआ है। तत्त्व, मालिक या अपने निज स्वरूप का ज्ञान होने से ही यह पर्दा हट सकता है और तब ही हम तीन तापों से मुक्त हो सकते हैं और चूँकि यह ज्ञान गुरु देता है इसीलिए गुरु के आगे नमस्कार ज़रूरी है।

ये तीन ताप, शरीर, मन और आत्मा के दुःख कहलाते हैं। इन तीनों पर विजय पाने के लिए ही हमारे सनातन धर्म या हिन्दू धर्म में चार आश्रम— ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास बनाये गये हैं। चारों आश्रम इतने ज़रूरी हैं कि इनमें से किसी आश्रम को हम निकाल नहीं सकते। आश्रम शब्द है क्या ? यह समझने की बात है कि इसको आश्रम क्यों कहा ? श्रम होता है जो शरीर से किया जाता है, जो शरीर से मेहनत करते हैं। परिश्रम कहते हैं जो मन से किया जाता है और आश्रम होता है जो आत्मा के लिए किया जाता है। देखो ! हमारा

कैसा अच्छा धर्म है जिसमें उन्होंने कहा भई ! तुम चार आश्रमों पर चलो। किसके लिए ? आत्मा की उन्नति के लिए। अगर इन चारों आश्रमों में से आपने एक की तरफ भी पूरा ध्यान नहीं दिया तो आप आत्मा तक नहीं पहुँच सकते और परम शान्ति को प्राप्त नहीं कर सकते। वास्तव में ये आश्रम आत्मा की प्राप्ति और मोक्ष के लिए सीढ़ियाँ या दर्जे हैं।

ब्रह्मचर्य आश्रम—यह आश्रम शरीर के नियमों को पालन करके स्वस्थ बनाये रखने और अर्थ प्राप्ति के लिए शिक्षा लेने के लिए है। शरीर को स्वस्थ रखना धर्म है। अगर शरीर को आप स्वस्थ नहीं रखते तो आप उस मालिक के मन्दिर को ठीक नहीं बना के रख रहे जिस के अन्दर वह विराजमान होता है। ब्रह्मचर्य के अन्दर बड़ी भारी शक्ति है। आपके साधारण जीवन के लिए ज़रूरी है कि पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य रखो। अगर ब्रह्मचर्य आश्रम के नियमों का पालन किया जाय तो मनुष्य की उमर सौ वर्ष की मानी गई है जो भोगी जा सकती है।

जिस ने पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य रख कर अपनी शक्ति को बढ़ाया वह फिर अपना गृहस्थ जीवन भी आनन्दमय भोग सकता है और आगे का जो हाल होगा वह ठीक होगा।

गृहस्थ आश्रम—गृहस्थ आश्रम बड़ा ज़रूरी है और इसकी बड़ी महिमा है। शरीर के बाद है मन। इस आश्रम में काम अर्थात् मन की कामनाओं की पूर्ति और प्रेम का अनुभव करने के लिए प्रवेश किया जाता है। मन स्वस्थ तभी रह सकता है जब हम गृहस्थ आश्रम को शुभ संकल्प से प्रेमपूर्वक निभायें। 'गृह' मायने घर और 'स्थ' का मतलब है ठहरना ; घर के अन्दर ठहरना। पहले शरीर में ठहरोगे, फिर घर में ठहरोगे तब जाकर के निज घर में ठहरोगे। जो इस घर में प्रेम व शुभ संकल्प से आनन्दपूर्वक नहीं ठहर सका वह उस घर भी नहीं जा सकता। आजकल का मनोविज्ञान यह बताता है कि जिन लोगों की कामवृत्ति ठीक तरह से तृप्त नहीं होती उनका दिमाग़ बिगड़ जाता है, दिमाग़ी बीमारी लागू हो जाती है लेकिन हमारे

ऋषियों ने तो यह पहले ही कह रखा है। महर्षि मनु जी महाराज ने कहा है :—

याबन्न विन्दते जायां तावदर्द्धो भवेत पुमान् ।

जब तक मनुष्य (यह मैं मनुष्यों के लिए कह रहा हूँ, उनके लिए नहीं कह रहा जो ब्रह्मचारी हैं और उन्होंने विवाह नहीं किया—पूर्ण पुरुष थे) विवाह नहीं कर लेता तब तक वह आधा मनुष्य कहा जाता है। स्त्री अर्द्धांगिनी कहलाती है ; अर्द्धांगिनी नहीं तो मनुष्य आधा ही रहा ! हमारे यहाँ तो जो ईश्वर की धारणा है, ईश्वर को जब मनुष्य के रूप में माना जाता है, उसमें भी ईश्वर अकेला नहीं होता, उसके साथ शक्ति होती है। शक्ति और शक्तिमान्, माया और ब्रह्म दोनों हों ; ब्रह्म के बिना माया अधूरी है और माया के बिना ब्रह्म अधूरा है। गृहस्थ आश्रम में स्त्री पुरुष, जब दोनों का अनुभव हो जाता है तब तो माया से परे जाओगे ! जब माया तुमने देखी ही नहीं तो उससे परे कैसे जाओगे !! तो फँस जाओगे ! इसलिए

जो लोग सारी उमर ब्रह्मचारी रहते हैं उनके गिर जाने का खतरा रहता हैं। पत्नी को जाया कहा है, यह भी एक बड़ी भारी बात है। जाया कहते हैं मां को; पत्नी को मां कहा गया है क्योंकि विवाह एक नया जन्म होता है। तो जब तक मनुष्य जाया का प्राप्त नहीं करता तब तक मनुष्य आधा है। आगे कहा गया है :—

यन्न बालैः परिवृतं श्मशान एव तद् गृहम्।

जिस घर में बालक नहीं खेलते वह भी श्मशान के तुल्य है। आजकल तो इतने बच्चे पैदा नहीं करने चाहिएँ लेकिन यह भी ज़रूरी है कि गृहस्थ करो तो बच्चे पैदा करने के लिए करो। यह भी एक दर्जा है जिससे गुज़रना बहुत ज़रूरी है। गृहस्थ आश्रम के अन्दर आपको प्रेम का अनुभव होता है। आपको घर वालों से प्रेम करना चाहिए। जब घर वालों से प्रेम नहीं किया, जो मनुष्य हैं उनसे ही प्रेम नहीं किया तो उस मालिक से क्या प्यार होगा जिसका पारावार नहीं है, जिसको देखा ही नहीं है। यह भी Training अर्थात् एक शिक्षा होती है, क्योंकि

मालिक का अनुभव भी प्रेम और भक्ति से ही होता है और कोई रास्ता नहीं। प्रेम एकत्रित करने और मिलाने वाली चीज़ है। बच्चों से प्यार करो, पोतों से प्यार करो लेकिन फँसना नहीं क्योंकि हम सब इस जगत् के अन्दर इस जीवन में इसलिए आये हैं कि हम उस प्यार को जिस प्यार पर चलने से हम मालिक, परमतत्त्व के साथ मिल जायेंगे, उस प्यार को पहले अनुभव करें। अगर प्यार को पहले अनुभव करने के लिए आप जीवन व्यतीत कर रहे हैं तब तो आपका रास्ता सीधा है नहीं तो दु:खमय है जीवन। मोह नहीं प्यार तो जरूरी है क्योंकि जो आपके रिश्तेदार होते हैं, जो बच्चे होते हैं, भाई, बहिनें, पोते, पोतियाँ होती हैं वही आत्माएँ होती हैं जिनसे आपका पहले सम्बन्ध होता है; वे लेने देने के लिए आते हैं। जब यह कर्म का सिद्धान्त दिमाग़ में रखा जाय तो अगर किसी घर वाले ने किसी से ज़्यादती कर दी है तो समझो कि पिछले जन्म का कर्म वापिस दे रहे हैं; उस से घृणा नहीं करेंगे और इस तरह कर्म के समझने से घर में शान्ति हो सकती है। क्योंकि

मालिक को पाने के लिए हमको पहले अपना जो आचार है, जो हमारा चरित्र है, जो हम घर के अन्दर व्यवहार करते हैं, जो हम लोगों से व्यवहार करते हैं इसमें सच्चाई हो और नैतिकता हो। जो आपको मिलता है उसमें आनन्द से गुज़रा करो और आशावादी रहो। हर चीज़ में अच्छाई ही देखो। किसी दूसरे की सम्पति या किसी दूसरे के हिस्से को न छूओ, न किसी दूसरे के धन की तरफ़ लालच से देखो, इसी से सारा व्यक्तित्व बनता है। तभी हम मानसिक दुःख, बीमारी और अज्ञान से बचते हैं और तब ही उसका पता चलता है जो सबसे न्यारा है अर्थात् तब ही आप परमतत्त्व की तरफ़ जाओगे। ये बातें जो कही गई हैं ये बिलकुल कसौटी पर कसे हुए अनुभव के बाद कही गई हैं इसलिए इन पर चलना ज़रूरी है।

वानप्रस्थ आश्रम :—तीसरा आश्रम है वानप्रस्थ आश्रम। वानप्रस्थ आश्रम का मतलब है वन में रहना ; यह नहीं कि वन में चले जाना। वैसे तो वन में अगर कोई एकदम छोड़ के चला जाय, उसके लिए ज्ञान

नहीं है। इससन्त मत में यह विशेषता है कि घर में रहते हुए, घरेलू जीवन गुज़ारते हुए, अपना सब काम करते हु ए, इसी संसार के अन्दर रहते हुए भी हम अपने निज घर को पहुँच सकते हैं। इस आश्रम को मैं अर्ध रिटायरमैंट अर्थात् आधा विकास का समय कहता हूँ। काम-काज का ज़्यादा भार बच्चों पर डालकर मनुष्य को अपना ध्यान सत्संग की तरफ़ देना चाहिए ताकि मोक्ष को प्राप्त कर सकें। ब्रह्मचर्य आश्रम में हम अपने लिए जीते हैं, गृहस्थ में परिवार के लिए जीते हैं और वानप्रस्थ आश्रम में आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करके धर्म को जानने और समाज के लिए जीते हैं अर्थात् जो शिक्षा हमने प्राप्त की है उसको दूसरों से बांटा व परहित को ध्यान दिया जाता है :—

परहित सरिस धर्म नहीं भाई।
पर पीरा सम नही अधमाई॥

इसी एक बात को अगर समझ लें कि दूसरे के हित से ज़्यादा कोई धर्म नहीं है तो अनुशासन हो जाता

है अर्थात् अपने आप पर काबू पाया जा सकता है। अगर आप सिर्फ़ परहित, दूसरे की भलाई का ध्यान रखें तो यही सब तीर्थों, सब प्रकार के साधनों, व्रत व नियमों से ऊँचा धर्म है; सब तीर्थ आप के हैं; दूसरे का हित अगर आपके मन में है तो आपका स्वयं हो जायेगा। अगर आपकी सास क्रोध कर रही है तो आप नहीं करोगी। क्यों? वह क्रोध कर रही है; अरे! उसके अन्दर तो बीमारी है। जो क्रोध करता है, नफ़रत करता है वह तो बीमार है; उस पर दया करो, उसका हित करो। इस तरह अव्वल तो वह ठीक हो जायेगा अगर नहीं वह होगा तो आपका तो काम बराबर हो ही जायेगा; परहित करने वाले का हमेशा बेड़ा पार होता है। चाहे जिसका हित किया जाय वह उस को अनहित मान ले तो भी कोई बात नहीं, आपको तो ज़िद पर आ जाना चाहिए कि मैं तो हित करूँगा इस से; दूसरा नफ़रत करेगा, मैं प्रेम करूंगा। क्योंकि मालिक सबके अन्दर ओत-प्रोत है, सब के अन्दर बैठा हुआ है, इसलिए सबसे प्यार करना चाहिए।

अच्छाई के लिए ज़िद करने वाले ज़िद्दी आदमी की यहाँ जरूरत है।

संन्यास आश्रम--और जब 75 वर्ष का हो गया, जब शिक्षा भी प्राप्त कर ली, कुछ साधन भी सीखा तब तो भई, पिछले पच्चीस वर्ष तो सारे ही मालिक में लगा देने हैं; यह आश्रम मोक्ष के लिए होता है। इस तैयारी के अन्दर मन शुद्ध होकर शिवसंकल्प हो जाना है और ऐसा हमारा सनातन धर्म है जो हमें तैयार करती है। आखिरी सीढ़ी पर जब पहुँचोगे तब जाकर के आपको यह समझ आयेगी कि वह सन्तों का वह गुरु क्या है जिसको सन्त गुरु कहते हैं जो सबसे न्यारा है, जिसकी बाबत आज के शब्द में दाता दयाल ने कहा है :—

साध अचरज अकथ कहानी।।
रूप न रंग न रेखा वाके, निराकार निरबानी।

वह जो मालिक है जहाँ से यह सब रूप, रंग, रेखा निकलती है और रूप-रंग रेखा, से ही अपना शरीर मिलता है हमें, वही रूप, रंग, रेखा, ही हमारे

रिश्तेदार है, वही रूप, रंग, रेखा हमारे अन्दर अनुभव होते हैं; त्रिकुटी का अनुभव होता है सहस्त्रदलकमल का अनुभव होता है, शून्य, महाशून्य का अनुभव होता है, वह भी रूप, रंग, रेखा है और प्रकाश भी रूप है। शब्द रूप से परे है लेकिन शब्द से परे जहाँ से यह शब्द निकला है वह अचरज है। उसका कोई बयान नहीं किया जा सकता, कहा नहीं जा सकता लेकिन वह है जरूर। जब तक आप अनुभव नहीं करें तब तक आप उसको समज नहीं सकते जैसे क्या आप कह सकते हैं कि गुड़ की मिठास कैसी होती है या गुड़ का स्वाद चीनी के स्वाद से कैसे अलग है, नहीं बता सकते। इसलिए वह जो है उसको क्यों कहा गया है कि उसको कहा नहीं जा सकता, इसका मतलब यह नहीं कि वह है नहीं; वह है तो ज़रूर, एक सीढ़ी से दूसरी, तीसरी, चौथी सीढ़ी से जब वहाँ पहुँचोगे तब आप ही कहोगे कि हाँ! यह है तो सही! उसका रूप, रंग, रेखा नहीं लेकिन यह रूप, रंग रेखाएँ सब उसी से हैं। निराग वह होता है जिसके अन्दर कोई बन्धन नहीं होता।

पूरी तरह से स्वतन्त्र, आज़ाद, सब बन्धनों से मुक्त हो जाने वाली वह हालत है लेकिन उस हालत पर पहुंचने से पहले हमें जैसा मैंने आज कहा, हमें अपने जीवन को वैसे बनाना है जिस पर चलकर हमारा मन शुद्ध हो, प्रेम का भी अनुभव हो, लोक भी बने और परलोक भी बने :—

कोई कहे तो कहे किस मुख से, नहीं वहां मन बानी।
पार अपार वार नहीं वाका, अपरम्पार निशानी ॥

उस अवस्था को जिसको हम पाते हैं उसको हम कैसे कह सकते हैं, वह मन से परे है। जब मन से परे चले गये, मन काम ही नहीं करता वहाँ तो मन क्या पहचानेगा उसको! हम उसके बारे में कुछ कह नहीं सकते लेकिन कहते सभी हैं। तुलसीदास जी ने कहा है :—

सब जानत प्रभु की प्रभुताई।
बिना कहे भी रहा न जाई ॥

कहा इसलिए जाता है कि जब उसका अनुभव कर लिया वह इतनी आनन्ददायक वस्तु है, उसमें पहुँच कर वह हालत हो जाती है जिससे कि हम

हर क़िस्म के भेद-भाव से अलग हो जायें। वह भेद-भाव से अलग है, जब भेद-भाव से अलग वाली चीज़ के साथ रहे तो उस संगत का असर होता है और जीवन में आकर भी भेद-भाव हट जाता है, जिससे जीवन सुखी हो जाता है। उस के बारे में इतना कहा जा सकता है कि वह ऐसा है,ऐसा है, उसकी मसालें दे देते हैं जैसे गूँगे का गुड़। क्योंकि वह वाणी से परे है इसलिए वाणी उसको व्याख्या नहीं कर सकती, वहाँ पर पहुंच नहीं सकती, कोशिश करती है, पता नहीं लगता। परम दयाल जी महाराज कई दफ़ा कहते थे क्या करूँ! शब्द नहीं मिलते,क्या बताऊँ क्या है! लेकिन जब सन्त व साधु थोड़ी देर के लिए भी उसके साथ जुड़ जाता है, जुड़ना है ज़रूरी और हर एक आदमी को अनुभव कभी न कभी ऐसा होता है, जब वह जुड़ जाता है तोफिर उसके व्यवहार के अन्दर अपने आप फ़र्क आ जाता है। लोग हैरान होते हैं कि भई! महाराज जी ने कभी किसी से नफ़रत क्यों नहीं की? क्योंकि हमेशा वहाँ जुड़े हुए हैं जहाँ नफ़रत है ही नहीं, वहाँ भेद-भाव है ही नहीं। जो उससे जुड़ा हुआ है आया उसका तो ऐसा ही व्यवहार

होगा। हैरानी की बात उनके लिए होती है जो कभी जुड़ नहीं। जो जुड़कर आते हैं वे कहते हैं भई यह वह बात है जैसे दाता दयाल जी कह रहे हैं कि वहाँ अकथ कहानी है; मन नहीं पहुचता, वाणी नहीं पहुँचती। जब वह हालत ही ऐसी है जोकि अपने आप में एक निराली हालत है। निराकार तो यहाँ कहा है उन्होंने मगर वह निराकार भी है और साकार भी है; बिना शक्ल के भी है, शक्ल भी उसी की है, दोनों हैं। अगर कोई कहे कि सिर्फ़ निराकार है, वह भी ग़लत है क्योंकि यह जो आकार है फिर आया कहाँ से? यह सारा जगत् जो है यह उसका आकार है, रूप है, रंग है। अगर वह वहाँ नहीं हो तो उसके अन्दर; उसके अन्दर रंग, रूप की ताक़त छुपी हुई नहीं होती तो वह आता कैसे? अगर उसके अन्दर शब्द छुपा हुआ नहीं होता तो शब्द सुनाई कैसे देता? इसीलिए कहा है ना :—

शब्द गुप्त रहा अनाम, शब्द प्रकट तो धरिया नाम।

समझने की बात है। यह नहीं कि कुछ नहीं है; सब कुछ है। इसलिए उसका मतलब यही है कि उस परमतत्त्व से मिलने के बाद फिर जो जीवन है वह अपने आप ही सुखी हो जाता है। वह सबके अन्दर एक ही तत्त्व समझता है :—

बिन पग चले बिना अंग डोले, बिन जिभ्या मृदुबानी।

इसका मतलब समझने के लिए आप मन के रूप को समझो। वह चलता नहीं है, वह चलाता है। मन के पग नहीं हैं, मन से ही चलता है। वह सुनता नहीं है वह सुनाता है। क्यों? मन का रूप है यह। कई बार मैंने कहा है आप अगर कोई किताब पढ़ रहे हैं, आपको आपका बेटा कहता है पिता जी, पिता जी, पिता जी! तीसरी बार आपने सुना। हाँ बेटा! क्या कहते हो? पिता जी मैंने तो तीन बार आपको बुलाया! आप कहते हैं, मेरा मन किताब में लगा हुआ था। तो उसके कान नहीं हैं लेकिन कान उसके बिना सुन नहीं सकता। आत्मा क्या है? मन भी आत्मा है। आत्मा वह

चीज़ है जिसको देखा नहीं जा सकता लेकिन जिसके विना देख नहीं सकते।

> बिन पग चले बिना अंग डोले, बिन जिभ्या मृदुबानी।
> भेद अभेद नहीं वहां कुछ भी, कैसे कोई पहचानी॥

जब मन को उधर लगा दिया जाता है और जब उस हालत को पहुँच जाता है जहाँ भेद और अभेद नहीं रहता जहाँ निराकार और साकार नहीं रहते। परमात्मा जो कुछ भी है निराकार भी है साकार भी है दोनों से परे भी है, यह समझने की, बात है। अगर आप उसे अलग व साकार भी मानते हो तो कोई बात नहीं, जब पहुँचोगे तब पता चलेगा कि वह अलग भी है, साथ भी है, दूर भी है और नजदीक भी है। यही सब बातें जो दाता दयाल जी अपने अनुभव की इस शब्द में लिख रहे हैं यही उपनिषदों में भी लिखी हैं। और परम दयाल जी महाराज ने तो अपने सीधे-सादे, सुन्दर शब्दों में यह कहकर बिलकुल ही साफ कर दिया कि जब मैं ऊपर जाता हूँ तो मुझे यह होश ही नहीं रहता कि मैं हूँ, यह भी नहीं होता कि मैं नहीं हूँ। क्योंकि मैं वापिस आता हूँ इसलिए

मैं अलग भी हूँ। तो स्पष्ट हुआ कि एक दृष्टि से वह निराकार है और दूसरी दृष्टि से साकार है :—

हम तो सार शब्द लख पाया, सतगुरु की सहदानी।

शब्द का भी सार हमने ढूँढ़ा लेकिन वह जो है वह शब्द से भी परे है। राधास्वामी से चलेंगे लेकिन राधास्वामी से भी दूर जाना होगा :—

नहीं आवे नहीं जावे कहीं वह, निश्चल अमन अमानी।
जड चेतन विवेक कहो कैसा, केहि विधि तेहि अलगानी।।

जगत् में जो कुछ भी है जड़ या चेतन सबके अन्दर वह ओतप्रोत है इसलिए उसको अलग कौन करे! कोई कह नहीं सकता कि वह अलग है, कोई कह नहीं सकता कि वह एक है। इसलिए उसको हम कोई एक ख़ास नाम दे दें, कह दें अलग है या कह दें जड़ है या कह दें चेतन है, अगर कहें कि चेतन है तो जड़ कहाँ से आया? इसलिए आखिर में आकर के बड़ी ऊँची-ऊँची व्यवस्था वाले महान् अनुभवी सन्त भी यही कहते हैं कि कुछ नहीं! कुछ नहीं!! उसकी बाबत कुछ नहीं! कुछ नहीं!!

उसकी बावत कुछ नहीं बताया जा सकता !!!

वह अनाम वह अगति अमाया, माया नाम कहानी ।
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, जागे गुरुमुख ज्ञानी ।

उस मालिक की कहानी आश्चर्यजनक है, अकथ है, कही नहीं जा सकती, अगति है। गति होती है चाल, अगति होती है चाल से परे। अमाया है; माया भी उसी की है और माया से पार भी है। माया से पार होना ज़रूरी इसलिए है कि माया में गति है और वह गति से परे है :—

राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, जागे गुरुमुख ज्ञानी ।

उसको पहुँचने व माया से दूर होने का रास्ता क्या है ? प्रकाश राधास्वामी के चरण हैं, प्रकाश को पकड़ो। प्रकाश पर पहुँचने के बाद, आगे फिर शब्द है और फिर अशब्द गति है। आज के दाता दयाल के इस शब्द का यह मतलब है।

★ ● ★

मासिक सन्देश

क्लीवलैण्ड, ओहायो
संयुक्त राज्य अमेरिका

मेरे प्यारे सत्संगियो :

राधास्वामी, परम दयाल सहाई !

विदेशी दौरे पर आने के बाद एक और मास गुज़र गया है। अब भी मुझे ऐसा महसूस नहीं होता कि मैं विदेश में हूँ। जहाँ भी जाता हूँ मुझे कोई भी चीज़ विदेशी नहीं लगती। सत्य तो यह है कि सारी पृथ्वी एक है। इसमें कोई शक नहीं कि सारी भूमि मालिक की है। मेरे कहने का मतलब यह है कि अलग-अलग देशों में रहने वाले लोगों में जो फ़र्क़ दिखाई देता है वह बनावटी है

इसलिए ही भारत के ऋषियों ने बहुत ही पहले कहा था कि 'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्' अर्थात् "उदार मन वाले लोगों के लिए सारा संसार एक परिवार है।"

यह बात परम दयाल जी महाराज के मानव परिवार के लिए सौ फ़ीसदी सही है। मानवता का यह परिवार भारत से ले कर मध्यपूर्व योरुप, कैनेडा, अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया तक फैला हुआ है। हमारे प्रिय श्री विश्वामित्र जी मराज जो परम दयाल जी के परम भक्त और आध्यात्मिक पुत्र हैं, ट्रिनोडाड वैस्ट इण्डीज़ में रहते हैं। वह आध्यात्मिक मानववाद की साक्षात् मूर्त्ति हैं, क्योंकि वह परम दयाल जी महाराज के असूलों पर सौ फ़ी-सदी चल रहे हैं। इसी प्रकार कैनेडा के श्री नन्द सिहरा तथा उनका परिवार, ग्रीनबे विसकान्सन के श्री अजीत कुमार तथा उनका परिवार, पिट्सबर्ग के डा० रामदेव तथा उनका परिवार, इसी प्रकार फ्लोरीडा की सुश्री ग्लोरिया तथा उसके माता पिता, कर्नल एलविन रुशने तथा उनका परिवार, श्री म [illegible]

रूथ बुश, जान तथा मारशा मिलर, जाहन तथा सूज़न कर्टन, आचार्य जोज़फ़ टक्कर, आचार्य गिलबर्ट रिजगार्ड, आचार्य रोडनहाईज़र तथा उनका परिवार, आचार्या थैल्मा कार्टर, आचार्य जौनेथन पीटर्स तथा श्रीमती पिल्डर्ड मकोनी तथा अन्य बहुत से अमरीकी सत्संगी परम दयाल जी के मानवता परिवार के आदर्श सदस्य हैं।

इसलिए जब मैं कहता हूँ कि सारी दुनिया एक है, तो मैं इसी सत्य की व्याख्या कर रहा हूँ। जब मनुष्य को इस सच्चाई का ज्ञान हो जाता है कि ईश्वर अपने असली रूप में एक ही परमतत्त्व है, तो अलग-२ धर्मों के भेदभाव समाप्त हो जाते हैं। इस सच्चाई के अनुभव करने का मतलब यह है कि पूर्ण पुरुष मालिक का अंश सुरत के रूप में हर एक व्यक्ति में मौजूद है। उसी परमतत्त्व की एक बूँद ने कोटि-२ ब्रह्माण्डों की रचना की है। वह अपने पूर्ण रूप में इस पृथ्वी या ब्रह्माण्ड में नहीं रहता, किन्तु उसका अंश सब जगह मौजूद है। इसलिए यदि हम ईश्वर की सेवा करना चाहते हैं तो हमें

मनुष्य की सेवा करनी चाहिए। यदि हम ईश्वर से प्रेम करना चाहते हैं, तो हमें मनुष्य से ही प्रेम करना चाहिए। यदि हम ईश्वर को समझना चाहते हैं तो हमें अपने आपे को समझना चाहिए। यदि हम ईश्वर बनना चाहते हैं, तो हमें पूर्ण रूप से एक सच्चा मानव बनना चाहिए। यह परम दयाल जी महाराज, दाता दयाल जी महाराज, सभी सन्तों, ऋषियों तथा विश्व के मुख्य धर्मों के चलाने वालों के आध्यात्मिक अनुभवों का निचोड़ है।

हर युग में परमतत्त्व मनुष्य के रूप में आकर मानवमात्र को चेतावनी देने के लिए और उसे अपने असली घर का रास्ता दिखाने के लिए सत्संग देता है। यही कारण है कि सन्तमत में उस जीवित गुरु का महत्त्व है, जिसने अपने गुरु के सत्संग से अपनी सुरत को पहचान लिया है और जो यही ज्ञान और अनुभव सत्संगियों को देता है। सुरत का अनुभव वैसे ही एक जीवित मनुष्य को दूसरे मनुष्य से मिलता है जैसे कि एक दीपक से दूसरा दीपक जलाया जाता है। एक जीवन्मुक्त व्यक्ति का यह स्वभाव होता

है कि वह अपने रूहानी अनुभव को दूसरों से बाँटे। जब तक कि वह ऐसा नामदान नहीं देता, तब तक वह एक सच्चा गुरु नहीं माना जा सकता। इस बात पर ध्यान देना बहुत ज़रूरी है कि एक सच्चे गुरु को ज़िम्मेवारी बहुत ही बड़ी होती है।

एक सच्चा गुरु ही ऐसा ज्ञान दे सकता है, जिससे मनुष्य सभी चिन्ताओं तथा भय से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार के ज्ञान का दान जो अभय दान कहलाता है पूरी तरह से सात्त्विक दान होता है। यहाँ पर यह बतलाना बहुत ज़रूरी है कि 'गुरु' शब्द के तीन मतलब होते हैं। पहला मतलब वह परमतत्त्व एवं परम पुरुष है, जो सुरत के रूप में हर व्यक्ति के अन्दर मौजूद है। इसी परमतत्त्व की किरणें सारे ब्रह्माण्ड में फैली हुई हैं। मनुष्य में यही तत्त्व उसका अन्दरूनी गुरु है। गुरु का दूसरा मतलब वह सच्चा ज्ञान है, जिससे मनुष्य को यह अनुभव हो जाता है कि उसका असली आपा शरीर, मन और आत्मा से परे है। गुरु शब्द का तीसरा मतलब वह रास्ता दिखाने वाला व्यक्ति है, जिसने

इसी सच्चे ज्ञान का अनुभव कर लिया है और जिसका जीवन प्रेम, शान्ति और सच्चाई का नमूना है। उस गुरु का यह स्वभाव होता है कि वह इस सच्चाई को फैलाए। मैं गुरु के पहले दो मतलबों की व्याख्या फिर कभी करूंगा। यहाँ पर तो केवल यह समझना है कि ज्ञानदाता के रूप में गुरु का क्या अर्थ है। सीधे-सादे शब्दों में, ज्ञानदाता गुरु वह हैं, जो सबसे ऊँचा दान यानि कि अभयदान दे सकता है। जैसा कि ऊपर बताया गया है कि सच्चा गुरु हर एक मनुष्य को परमतत्त्व का रूप मानता है और अपने आपको शरीर, मन और आत्मा से अलग सुरत मानता है। वह न ही केवल अपने आप को ऐसा समझता ही है, बल्कि अपने जीवन में एक-एक कदम पर वह इस सच्चाई को अपना कर चलता है।

ऐसे गुरु की पहली निशानी यह है कि उसका ज्ञान बाँटने में अपना कोई निजी स्वार्थ नहीं होता। वह धन के लिए या अपने नाम या यश के लिए सत्संग नहीं कराता। ऐसे सच्चे गुरु के लिए जो सत्संग को अपना व्यवसाय नहीं बनाता, यह ज़रूरी है कि वह

अपनी ही कमाई से जीवन निर्वाह करे। इसके अलावा, एक सच्चा गुरु हर किस्म के मोह, धन, यश और नाम की इच्छा से आज़ाद होने के कारण, ऐसी सच्चाई बयान करेगा, जिसको समझने वाले इने-गिने सच्चे सत्संगी ही होते हैं। यदि गुरु इस सच्चाई को बयान करने से कतराता है, तो इसका मतलब यह होगा कि वह आडम्बर को पसन्द करता है। एक ऐसे सच्चे गुरु की किरणें जो कि एक वीतराग पुरुष है, सत्संगियों को सदैव मानसिक शान्ति देंगी। यही शान्ति ही अभयदान कहलाती है। इसी अभयदान लेने के बाद ही व्यक्ति जीवन्मुक्त हो सकता है।

अब हमें यह बताना है कि उस शिष्य के क्या लक्षण हैं, जिसे यह सबसे ऊँचा दान, अभयदान दिया जाना चाहिए। सबसे पहला लक्षण यह है कि ईश्वर की खोज करने वाले व्यक्ति में एक ज़बर्दस्त लगन होनी चाहिए। इसी लगन को स्वामी जी महाराज ने तपन करारी कहा है, जिसका मतलब है मालिक को मिलने की बेचैनी। राधास्वामीमत भक्तिमार्ग

है। 'भक्त' शब्द का मतलब यह है जो विभक्त न हो। दूसरे शब्दों में: भक्त वह है जो अपने प्रियतम मालिक से एक हो जाता है। 'विभक्त' शब्द का मतलब बंट जाना है और भक्त का मतलब है न बंटना या एक हो जाना। जब मनुष्य को यह महसूस होता है कि वह पहले परमतत्त्व से एक था और अब वह उससे अलग है, तो उसे उस समय तक चैन और शान्ति नहीं मिल सकती, जब तक कि वह अपने आधार से मिलकर एक नहीं हो जाता। आप लोगों को यह ज्ञान नहीं है कि स्वस्थ होते हुए, यशस्वी तथा धनवान् होते हुए भी उनकी बेचैनी, उनकी सुरत की वह तपन करारी है, जो उन्हें परम-तत्त्व में मिलाना चाहती है। यह तपन करारी या परम आधार में मिल जाने की ज़बर्दस्त लगन या इच्छा अभयदान प्राप्त करने वाले व्यक्ति का सबसे ऊँचा लक्षण है।

सच्चे सत्संगी का दूसरा लक्षण है उसका तंगदिल न होना। सचाई तभी जानी जा सकती है, जब मनुष्य का दिल उदार हो। परन्तु इस सच्चाई

को बहुत कम लोग जानते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि उनमें विवेक नहीं होता। हर एक धर्म का अनुयायी यही समझता है कि उसका अपना धर्म ही सबसे ऊँचा है। ऐसे तंगदिल लोगों को 'वेद पशु' कहा जाता है: इसी विवेक के लक्षण को बताते हुए कबीर साहिब ने कहा है :—

'गुरु पशु, नर पशु, त्रिया पशु, वेद पशु संसार।
मानुष वा को जानिये, जा में विवेक विचार॥'

गुरु पशु वह है जो गुरु को केवल शरीरधारी मानता है और अपने डेरे या अपने मत के सिवाय और किसी को सच्चा नहीं समझता। ऐसा तंगदिली का दृष्टिकोण व्यक्ति के अज्ञान के कारण है। इसी सच्चाई को बयान करने के लिए ही दाता दयाल जी महाराज तथा परम दयाल जी ने यह बताया है कि 'राधास्वामी' किसी फ़िरके का नाम नहीं है, बल्कि 'राधास्वामी' उस हालत का नाम है, जिसे हमने जीवन्मुक्ति कहा है। सच्चे गुरु का सत्संग मनुष्य को इसी हालत पर ले जाता है। नर पशु का

मतलब, एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के आधीन होना है। यह दासता चाहें किसी के धनवान् होने की वजह से या किसी के शक्तिशाली होने की वजह से हो सकती है। किन्तु सच्चा मानव किसी की झूठी खुशामद नहीं करता। त्रिया पशु का मतलब काम वासना में डूब जाना है। जो मनुष्य विवाहित जीवन में संयम से रहता है, वह ही रूहानियत पर चल सकता है। बेद पशु का मतलब, अपने-अपने धर्म में कट्टरता या अन्धविश्वास है। जिस व्यक्ति को सच्चे गुरु के सत्संग से विवेक हो जाता है, वह इन चारों प्रकार की गुलामियों से आज़ाद हो जाता है। दूसरे शब्दों में, वह सच्चा मनुष्य बन जाता है। इसलिए ही परम दयाल जी महाराज ने सन्तमत और सनातन धर्म को मानवता धर्म कहा है। मानवता ही अभयदान प्राप्त करने का रास्ता है और मानवता ही उसकी मंज़िले मक़सूद है। इसी मानवता की प्राप्ति को ही नाम-दान कहा गया है। अगले मासिक सन्देश में मैं नामदान की व्याख्या करूंगा।

मैं विश्व के सभी सत्संगियों को सद्भावना देता हूँ कि उन्हें स्वास्थ्य, सम्पत्ति और शान्ति प्राप्त हो। सब को राधास्वामी !

आपका फ़कीरमय
मानव

———

सूचना

सब सत्संगियों को सूचित किया जाता है कि हर साल की तरह इस साल भी गुरु पूर्णिमा का उत्सव 24 जुलाई, 1983 को मानवता मन्दिर में मनाया जायेगा।

सैक्रेटरी

17-7-83 को सुवह 6-25 पर कश्मीर मेल से परम सन्त हज़ूर मानव दयाल जी महाराज होशियारपुर पहुँच रहे है, उनके प्रबन्धन तथा दर्शन में लाभ उठायें।

वन्दनम्

चरण शरण की वन्दना, नित कोइ और न काम ।
गुरु बसो चित्त आय मेरे, बख्श दो निज नाम ।।
तेरी शरणागत हुआ फिर, किसकी राखूँ आस ।
आस तो तेरी दया की, जग से रहूँ उदास ।।
रूप ध्याऊँ, नाम गाऊँ, शब्द राता मगन ।
आठों याम तेरा ही सुमिरन, भाग मेरा धन ।।
सीस पर निज कर कमल धर, लिया चरण लगाय ।
पतित पापी तर गया, गुरु शरण तेरी आय ।।
मुक्ति की नहीं चाह मन में, भक्ति प्यारी लाग ।
राधास्वामी की दया से, भाग पूरन जाग ।।

मानवता मन्दिर में अगला मासिक सत्संग
17-7-83 को होगा ।

Regd. No. 2626574 JULY 10th 1983
MANAV MANDIR NWHSP—7

ADDRESS

To

1283 Sh. A. Hnmanth Rao
H. No. 10-3-194/8 Humayun
Nagar Hydrabad A. P.
Pin—500028

From :

MANAVTA MANDIR
SUTEHRI ROAD,
HOSHIARPUR.

Phone : 2022

Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur (Pb.)